वर्तमान में नारी विमर्श (संदर्भ हिन्दी साहित्य)

डॉ0 अनुपम मिश्र
असि0 प्रोफेसर-हिन्दी
राजकीय महिला महाविद्यालय
छिबरामऊ (कन्नौज)

सारांश

अस्मितामूलक विमर्शों में अन्य विमर्शों की तरह नारी-विमर्श भी महत्वपूर्ण स्थान रखता है। स्त्री विमर्श से तात्पर्य उस विमर्श से है जिसमें स्त्री-अस्मिता को केन्द्र में रखकर एक साहित्यिक आन्दोलन खड़ा किया गया, जो लैंगिक विषमता मूलक समाज के प्रति विरोध दर्ज कराता है। स्त्री-विमर्श की अवधारणा इस बात पर टिकी है कि नारियों के राजैनतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक अधिकारों में लैंगिक भेदभाव कोई कारण न बने। किन्तु देखा गया है कि पितृसतात्मकता, अहमन्यता, जैविक संरचना और पुरूष होने का दंभ इत्यादि ऐसे कारण हैं जो सैद्धान्तिक एवं वैचारिक स्तर पर 'फेमिनिज्म' का समर्थन करने का दंभ भरते हैं पर तारीखे-हकीकी कुछ और ही है। इन्हीं खतरों से सावधान होकर नारीवादी लेखिकाओं ने स्त्रियों के अनुभव जनित साहित्य को नारीवादी आन्दोलन का प्रस्थान बिदु माना है।

अन्य सैद्धान्तिक अनुशासनों एवं विमर्शों की भांति स्त्री-विमर्श भी पश्चिम के नारीवादी आन्दोलन से प्रेरित है, इसलिए कुछ आलोचक इस साहित्यिक आन्दोलन में मौलिकता का अभाव देखते हंै? दूसरी बात यह है कि जिस प्रकार से साहित्यिक और सिनेमाई दुनिया में स्त्रियों को ग्लैमराइज्ड दिखाया जाता है उसी तरह यथार्थ जगत में नहीं है, प्रत्युत स्थिति इससे उलट है फिर भी इतना तो कहा ही जा सकता है कि स्त्री अस्मिता ने जो मुकाम आज हासिल किया है, आज से लगभग एक शताब्दी पहले यह सम्भव नहीं था।

(2) प्रस्तावना

ज़ेहल के आज़ार ने लागिर किया है इस कदर।
शकल पहिचानी नहीं जाती हमारी इन दिनों॥
बाप, शौहर, बेटा, भाई ग़रज सब इस कैद में।
हम पै लाते हंै मुसीबत बारी-बार इन दिनों॥
कर मिहर इस बेजबां पै वरना होती हैं तमाम।
हाथ से रख ली है सीने पर कटारी इन दिनों॥[(1)]

भारतेन्दु युगीन लेखिका हरदेवी ने यह गजल सन 1881 में लिखी थी जिसमें स्त्रियों की दुर्दशा का चित्र बहुत विश्वसनीयता एवं मार्मिकता के साथ किया गया है। जिस प्रकार आचार्य शुक्ल ने भक्ति आंदोलन के संदर्भ में लिखा है- "अपने पौरूष से हताश जाति के लिए भगवान की शक्ति और करूणा की ओर ध्यान ले जाने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही क्या था।" [(2)] उसी प्रकार हर देवी ने सन 1882 में 'सीमंतनी उपदेश' नामक पुस्तक में स्त्रियों की दुर्दशा का चित्रण करते

हुए जगतपिता परमेश्वर से अपना निवेदन अभिव्यक्त किया है और कहा कि जो दयामय, करुणामय पिता है, वह इतनी निर्ममता स्त्री जाति के साथ क्यों करता है। वे लिखती हैं -'' हे! जगत पिता क्या तूने हमको पैदा नहीं किया, क्या हमारा पैदा करने वाला कोई खुदा है लोगों ने तुम्हारा नाम मरद करार दिया इसलिए तू भी हिंदुओं की ही तरह बेरहम बन गया है अगर तुझको हमारी यही हालत मंजूर थी तो हमारी पैदायश किसी और तरह से करता जिससे हमको भी तसल्ली होती और मजलूमों की आवाज तो दुनिया की अदालत में सुनी जाती है क्या तूने हम मजलूमों के लश्कर को देखकर अपनी अदालत का दरवाजा बंद कर लिया है?'' [3] 'सीमंतनी उपदेश' का यह उद्धरण एक तरह से स्त्रीवादी लेखन की प्रस्तावना है जिसमें पितृसत्ता के शोषण-चक्र से छुटकारा पाने की फरियाद लेखिका ने की है। 'तेरा नाम मरद करार दिया है' वाक्यांश में पितृसत्ता की अवधारणा ध्वनित होती है। यह संरचना हिंदी साहित्य के इतिहास की पितृसत्तात्मक गढ़न में निहित है। इतिहास हमेशा से ही वर्चस्व का सबसे कारगर हथियार रहा है। किसी समुदाय या जाति के अनवरत शोषण को सुनिश्चित करने के लिए उसका इतिहास मिटाना बहुत जरूरी होता है। चेतना और स्वाभिमान से हीन होते ही वह समूह खुद ही विजेता समुदाय की गुलामी को अपना धर्म समझने लगता है पितृसत्ता ने पूरी दुनिया में वर्चस्व के इसी औजार का सहारा लिया है।

पितृसतात्मकता की अवधारणा को 'मनुस्मृति' के एक प्रसिद्ध छन्द (श्लोक) से समझा जा सकता है। मनुस्मृति वे कहते हैं कि पिता, पति एवं पुत्र के आश्रय में स्त्रियों को रहना पड़ता है और उन्हें कभी भी

स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं होती-

'पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने।
रक्षन्ति स्थाविरे पुत्राः न स्त्री स्वातन्त्रयमर्हति॥'(4)

केवल पितृसत्ता ही नहीं प्रत्युत ऐसी बहुत सी विचारधारायें, रूढ़ियां और तर्कजाल हैं जिन्होंने स्वतंत्रता और समानता की राह में रोड़ा अटकाया है। नारी स्वतंत्रता के अन्तर्विरोधों को समझना आवश्यक है क्योंकि संप्रति नारी स्वतंत्रता का मायाजाल बनाकर किस प्रकार उनका उपभोग किया जा रहा है- यह भी विचारणीय है। नवपूंजीवादी व्यवस्था किस प्रकार स्त्रियों को एक पदार्थ में तब्दील कर रही है- इससे भी नारीवादियों को सावधान रहने की आवश्यकता है। बहरहाल भारतेंदु युगीन लेखिका श्रीमती हर देवी की रचना 'स्त्री विलाप', और 'सीमंतनी उपदेश' को इस आलेख की प्रस्तावना के रूप में देखा जा सकता है।

नारीवादी साहित्य के अध्ययन के उद्देश्य

आधुनिकता के उदय के फलस्वरुप आधुनिक काल में सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक जीवन में जो तीव्र परिवर्तन हुए उन्होंने समाज की स्थिरता को भंग किया तथा पारंपरिक मूल्यों में अनेक परिवर्तन किया। यही कारण है कि साहित्य में पारंपरिक पाठों के स्थान पर अनेक नए विमर्शों- (दलित, आदिवासी, किन्नर, तथा स्त्री विमर्श) को जन्म दिया। प्रस्तुत अध्ययन स्त्री विमर्श से संबंधित है। साहित्य में परंपरागत प्रतिमानों के प्रति आक्रोश से नये विमर्शों को स्थान मिला मिला तथा नारी विमर्श ने 'स्त्री-पाठों' को नए सिरे से रचने

का साहस दिखाया क्योंकि पाठ-पद्धति में परिवर्तन से दृष्टिकोण में बदलाव हो जाता है। ये बदलाव पहले आर्थिक एवं राजनीतिक क्षेत्र में घटित होता है, तत्पश्चात सामाजिक जीवन में परिवर्तन की परिघटना होती है। जब किसी साहित्य का सृजन होता है तो उस समय का इतिहास-बोध अलग होता है और कालांतर में जब रचना का पाठ किया जाता है, तब का इतिहास-बोध गतिशीलता की प्रवृत्ति के कारण कुछ परिवर्तित हो जाता है। यह परिवर्तन क्रमशः राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक जीवन में घटित होता है। प्रसिद्ध कवयित्री कात्यायनी ने अपने एक साक्षात्कार में कहा है- "राजनीति की पैठ जीवन में सार्वत्रिक होती है। राजनीतिक कविता की भी एक राजनीति होती है। जो लोगों को अराजनीतिक बनाते हैं, वे लोगों को सामाजिक बदलाव में सक्रिय भूमिका निभाने से रोककर शासक वर्ग की राजनीति की सेवा करते हैं, क्योंकि सामाजिक बदलाव की मुख्य भूमिका राजनीतिक अधिरचना होती है।"[5] अतएव यह कहा जा सकता है कि राजनीतिक पाठ-पद्धति में हस्तक्षेप करके स्त्री जीवन को सुसंगत, तर्कशील और संपूर्ण मनुष्य बनाना नारी विमर्श का ध्येय है। जिस प्रकार मार्क्स ने राजनीतिक एवं सामाजिक जीवन में बदलाव का मुख्य कारक आर्थिक माना है, उसी प्रकार स्त्री जीवन में बदलाव का मुख्य कारक आर्थिक एवं राजनीतिक है। अतः यह स्पष्ट है कि जब तक आर्थिक रूप से स्त्रियां स्वतन्त्र एवं आत्मनिर्भर नहीं होंगी तब तक स्त्रियों के सामाजिक न्याय की कल्पना करना व्यर्थ है।

पहले यह कहा गया है कि जैविक संरचना के कारण पुरुषों और स्त्रियों में भेद किया जाता है, जिसके कारण स्त्रियों को कमतर

आंकने की प्रवृत्ति पुरुष समाज में पाई जाती है। इसी अवधारणा से आहत होकर प्रसिद्ध स्त्रीवादी चिंतक सिमोन दि बुआ ने अपनी पुस्तक 'द सेकंड सेक्स' में उक्त बद्धमूल विचारधारा का खंडन करते हुए कहा है कि 'स्त्री पैदा नहीं नहीं होती बनाई जाती हैं।'(6) इस संबंध में डॉ बच्चन सिंह का कथन उल्लेखनीय है- "इन पितृसत्तात्मक संरचनाओं की बात मार्क्सवादियों और मनोविश्लेषणवादियों ने भी की है लेकिन नारीवादियों ने स्त्री पर पड़ने वाले इनके प्रभावों पर स्वयं को केंद्रित किया है। उनका मानना है कि कोई भी दमनकारी संरचना जितना स्त्री को प्रभावित करती है, उतना पुरुषों को नहीं। वे इन दमनकारी संरचनाओं का यथार्थरूप सामने लाना चाहते हैं और उन्हें बदलना चाहते हैं। नारीवादी साहित्य सैद्धान्तिकी का उपयोग भी इसके लिए करते हैं।"(7) अतएव नारी जीवन की त्रासदियों, विडम्बनाओं, अंधेरे-उजालों आशा-प्रतीक्षा आदि को नारी की संवेदनात्मक चेतना के साथ मुखरता से प्रस्तुत करना तथा नारी साहित्य को मुख्यधारा में शामिल करना नारी विमर्श का उद्देश्य है।

आधी आबादी की सक्रिय भूमिका के बिना सामाजिक परिवेश में बदलाव लाना बहुत मुश्किल है। जिस देश तथा समाज की प्रगति में महिलाओं की भागीदारी नहीं है, इतिहास साक्षी है कि वे देश कभी आगे नहीं बढ़ पाये। बल्कि ऐसे देश और समाज या समुदाय ने मध्यकालीन बर्बरता को ही प्रश्रय दिया है। ऐसे समाजों ने हर तरह से स्त्रीत्व को दबाया है। इन्हीं सब बातों को लक्ष्य करके प्रसिद्ध नारीवादी चिंतक जूलिया क्रिस्टीवा ने यह विचार दिया है- "पितृसत्तात्मक भाषिक संरचना में 'स्त्रीत्व' ही सब कुछ है जिसे दबाया गया है। इस

स्त्रीतत्व को उभारना पितृसत्तात्मक भाषिक संरचना को बदलना और पठित पाठों का पुर्नपाठ तथा उपपाठों का पुनराविष्कार ही साहित्यिक क्षेत्र में स्त्री-विमर्श का मुख्य लक्ष्य है''।[8]

साहित्यिावलोकन

शोध अध्ययन के पूर्व प्रकरणों में श्रीमती हर देवी और उनकी रचना 'स्त्रीविलाप' तथा 'सीमंतनी उपदेश' का उल्लेख किया गया है जिसे नारी विमर्श की आधारशिला के रूप में देखा जाना चाहिए। उल्लेखनीय है कि श्रीमती हर देवी भारतेंदुयुगीन लेखिका थीं किन्तु उन्हें और उनके साहित्य को तदयुगीन साहित्य-समाज में उचित महत्व नहीं दिया गया- कारण चाहे जो भी रहा है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता' निबंध लिखकर नारी-जगत के प्रति संवेदना व्यक्त की है। इसी प्रकार प्रसिद्ध छायावादी कवि जयशंकर प्रसाद ने 'ध्रुवस्वामिनी ' नाटक के माध्यम से स्त्रियों के पुनर्विवाह को शास्त्रसम्मत तथा धर्मसम्मत बताया। अचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार- ''प्रसाद जी के 'ध्रुवस्वामिनी' नामक बहुत छोटे से नाटक में एक संभ्रांत राजकुल की स्त्री का विवाह सम्बन्ध-मोक्ष सामने लाया गया है, जो वर्तमान सामाजिक आंदोलन का एक अंग है।[9]

छायावाद की प्रसिद्ध कवयित्री महादेवी वर्मा की रचना ' श्रृंखला की कड़ियाँ' (1942) में उस समय की आद्वितीय रचना है जो हिंदी में स्त्री विमर्श की प्रस्तावना है।

उनके संस्मरणात्मक रेखाचित्रों में आस-पास के ऐसे चरित्रों का रेखांकन किया गया है। जिन पर सामान्यतया हमारा ध्यान नहीं जाता लेकिन महादेवी वर्मा की करुणामयी दृष्टि ऐसे चरित्रों को

नायकत्व प्रदान करती है।

इस तरह समाज के शोषित पीड़ित वर्ग को उन्होंने प्रतिनिधित्व प्रदान किया। 'भक्तिन', 'बिन्दा' उनके ऐसे ही संस्मरणात्मक रेखाचित्र हैं। उनका 'भक्तिन' नामक रेखाचित्र 'स्मृति की रेखाएं' में संकलित है। इस रेखाचित्र में महादेवी वर्मा ने भक्तिन के संघर्ष, जिजीविषा, स्वाभिमान को रेखांकित किया है। इस पाठ में उन्होंने यह भी दिखाया है कि केवल पुरुष ही नहीं बल्कि नारियां भी नारियों का शोषण करती हैं। एक उद्धरण से यह बात स्पष्ट हो जायेगी- "जब उसने गेहूंए रंग और बटिया जैसे मुख वाली पहली कन्या के दो संस्करण और कर डाले तब सास और जेठानियों ने ओंठ बिचकाकर उपेक्षा प्रकट की। उचित भी था, क्योंकि सास तीन-तीन कमाऊ वीरों की विधात्री बनकर मचिया के ऊपर विराजमान पुरखिन के पद पर अभिषिक्त हो चुकी थी और दोनों जेठानियाँ काक-भुंशडी जैसे काले लालों की क्रमबद्ध सृष्टि करके इस पद के लिए उम्मीदवार थीं।"(10) उक्त पाठ में महादेवी वर्मा ने चित्रित किया है कि कैसे भक्तिन पितृसत्तात्मक समाज में अपने और अपनी बेटियों के हक की लड़ाई लड़ती रही। महादेवी वर्मा का स्त्रीविषयक साहित्य अपने आप में महत्वपूर्ण है, लेकिन उसमें करूणा और सहानुभूति की प्रधानता है व्यवस्था जनित आक्रोश नहीं है।

आक्रोश जनित विद्रोह और विमर्शरूप में नारीवाद की प्रेरणा हिंदी में पश्चात्य से प्रभावित है। कतिपय स्त्रीवादी विचारकों का मानना है कि मार्क्सवाद ने भी स्त्री मुक्ति के प्रश्न को गंभीरता से विश्लेषित किया है। सुपरिचित कवयित्री कात्यायनी के अनुसार-"स्त्रीवाद या

'फेमिन्जिम' 20वीं शताब्दी की परिघटना है। सटीक शब्दों में इसे 'बुर्जुआ फेमिनिज्म' कहा जाना चाहिए। 'सोशलिस्ट फेमिनिज्म' के नाम पर जो विविध विचार चलन में हैं, वे वास्तव में किसिम-किसिम नाम या रेडिकल सुधारवादी बुर्जुआ फेमिनिज्म ही हैं। कुछ लोग 'मार्क्सवादी फेमिनिज्म' का इस्तेमाल करते हैं जो भ्रामक है। स्त्रियों की पराधीनता और पुरूष -स्वामित्व के ऐतिहासिक कारणों की मार्क्सवाद एक वैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत करता है। यानी स्त्रीमुक्त का प्रश्न मार्क्सवादी सोच में अविभाज्यतः शामिल है।'[11] इसमें कोई संदेह नहीं है कि मार्क्सवाद के द्वन्दात्मक भौतिकवाद एवं ऐतिहासिक-आर्थिक परिप्रेक्ष्य ने नारी विमर्श को समझने और शक्तिमत्ता प्रदान करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

जूलिया क्रस्टीवा, एंजिला कार्टर, मैरीजैकोबर्स, जर्मेन ग्रीयर, केट मिलेट, जूलियट मिशेल तथा अन्य स्त्रीवादी रचनाकारों तथा चिन्तकों ने स्त्रीवाद का सौन्दर्यशास्त्र गढ़ा है और कहने की आवश्यकता नहीं है कि इन्हीं स्त्रीवादी चिन्तनकारों एवं पक्षकारों से हिन्दी का यह उत्तर-आधुनिक (post-modernism) विमर्श मुख्यधारा में शामिल हो पाया है।

भले ही महादेवी वर्मा जैसी लेखिकाओं ने स्त्रीवाद का विषय-प्रवर्तन हिंदी में कर दिया था, किंतु 20वीं शताब्दी के अंतिम दशक को मैं इस 'वाद' ने जोर पकड़ा। हिंदी में नारी विमर्श को नया आयाम देने वाली लेखिकाओं में उषा महाजन (बाधाओं के बावजूद

नयी औरत 2001), आशारानी बोहरा (स्त्री सरोकार 2002), मनीषा (हम सभ्य औरतें 2002), मैत्रेयी पुष्पा (खुली खिड़कियां 2003), इत्यादि महत्वपूर्ण है।

सुमनराजे की पुस्तक 'हिन्दी साहित्य का आधा इतिहास' भी स्त्रीविमर्श की दृष्टि से महत्वपूर्ण पुस्तक है। सुमनराजे ने इस पुस्तक में स्त्रीवाद के प्रति पुरुषों की उपेक्षा को लक्ष्य करके कहा है- "पुरुष इतिहासकारों ने महिला रचनाकारों के साथ बहुत अन्याय किया है। यह अन्याय उदासीनता के चलते हुआ हो, ऐसी बात नही, यह अन्याय विमुख रहकर किया गया है।"[(12)]

हिन्दी साहित्य में नारीवाद

हिंदी साहित्य में नारी विमर्श 1960 के दशक के बाद जोर पकड़ता है। वैसे प्रेमचंद और जैनेंद्र तथा अन्य पुरुष लेखकों ने नारीवाद विषय पर लेखनी चलायी, लंकिन घोषित स्त्रीवादी लेखिकाओं की मान्यता है कि पुरुषों द्वारा रचा गया नारीवादी साहित्य सहानुभूति के रूप में लिखा गया है। फिलहाल नारीवाद की पूर्व-पीठिका के रूप में पुरुषों द्वारा रचे गए साहित्य को स्वीकार किया जा सकता है।

छायावादी कवयित्री महादेवी वर्मा के स्त्री विषयक साहित्य के अनंतर अनेक नारीवादी लेखिकाओं ने स्त्रीवादी स्वर को बुलंद किया है। ऐसी लेखिकाओं में उषा प्रियवंदा, कृष्णा सोबती, मन्नू भंडारी और गौरापंत शिवानी का नाम उल्लेखनीय है। प्रभाखेतान की स्त्रीविमर्श की दृष्टि से 'अपरचित उजाले', 'कृष्णधर्मा मैं,' 'छिन्नमस्ता', 'पीली आंधी' आदि कृतिया महत्वपूर्ण हैं।

'छिन्नमस्ता' उपन्यास का एक उदाहरण प्रभा खेतान की नारीवादी मान्यताओं को उद्घाटित करता है- "औरत कहाँ नहीं रोती? सड़क पर झाड़ू लगाते हुए, खेतों में काम करते हुए, एयरपोर्ट पर बाथरूम साफ करते हुए या फिर सारे भोग- ऐश्वर्य के बावजूद.....पलंग पर रात-रात भर अकेले करवटें बदलते हुए.....हजारों सालों से इनके ये आंसू बहते जा रहे हैं।"(13)

कृष्णा सोबती ने स्त्री विमर्श को अपनी रचनाओं के माध्यम से काफी सशक्त किया है। सोबती जी ने 'डार से बिछड़ी', 'मित्रो मरजानी', 'सूरजमुखी अंधेरे के', 'ऐ लड़की', 'दिलो दानिश' आदि रचनाओं के माध्यम स्त्री-वाणी को मुखर बनाया है। सोबती जी का मुख्य योगदान यह है कि उन्होंने स्त्रीवाद को मन से उतारकर 'देह' पर केंद्रित किया।

इसी प्रकार अनेक लेखिकाओं ने ने स्त्री विमर्श को अपनी रचनाओं द्वारा सशक्त किया है। 'स्त्रीजीवन की समस्याओं की सामान्य भूमि का स्पर्श करते हुए भी, प्रत्येक महिला लेखिका का अपना-अपना विशिष्ट अनुभव संसार है, जिसे उन्होंने अपनी कृतियों में अभिव्यक्त किया है।

स्त्री-विमर्श की संभावनाएं

आज हम देखते हैं कि स्त्रीवादी मुक्तिकामना के सपनों को दिखाकर भूमंडलीकरण और नवपूँजीवाद के गठजोड़ ने स्त्री को देह रूप में प्रस्तुत करने का नया औजार गढ़ा है। स्त्रीवाद के नाम पर बेलगाम यौनिकता को यथार्थ के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है जिससे सावधान रहने की जरूरत है, अन्यथा यह नारीवादी आंदोलन अपने

मार्ग से भटक सकता है। इसके लिए देहमुक्ति के बजाय विचारों से मुक्त होने की आवश्यकता है। प्रसिद्ध नारीवादी कवयित्री एवं चिंतक कात्यायनी के शब्दों में -"जनपक्षधर बुद्धिजीवी का यह दायित्व है कि वह गहन बौद्धिक अध्यवसाय के साथ सामाजिक परिघटनाओं और सिद्धांतों को समझे, तभी वह सतह के यथार्थ को भेदकर सारभूत यथार्थ की समझ बना पायेगा और उसकी रचनाओं में प्रातिनिधिक यथार्थ का परावर्तन हो जाएगा।"[14]

संदर्भ

1. *स्त्री विलाप (1881)- हर देवी- आलोचना पत्रिका, अप्रैल-जून 2016, सम्पादक- अपूर्वानंद, पृ0-15*
2. *हिन्दी साहित्य का इतिहास- आचार्य शुक्ल, पृ0-271*
3. *आलोचना त्रैमासिक- अप्रैल-जून 2016, सम्पादक-अपूर्वानंद पृ0-16*
4. *मनुस्मृति-9.3*
5. *नया ज्ञानोदय (पत्रिका)-अगस्त-2017 सम्पादक-लीलाधर मण्डलोई पृ0-34*
6. *"One is not born a women, but becomes one"- Simone de Beauvoir*
7. *हिन्दी साहित्य का इतिहास-सम्पादक-डॉ0 नगेन्द्र एवं हरदयाल- पृ0-434 (बच्चन सिंह का लेख)*
8. *हिन्दी साहित्य का इतिहास-सम्पादक डॉ0 नगेन्द्र एवं हरदयाल पृ0-436*

9. *हिंदी साहित्य का इतिहास-आचार्य रामचन्द्र शुक्ल-पृ0 301*
10. *'भक्तिन' पाठ से उदधृत- महोदवी वर्मा*
11. *नया ज्ञानोदय अगस्त-2017, सम्पादक-लीलाधर मण्डलोई, पृ0-35*
12. *हिंदी साहित्य का आधा इतिहास-सुमनराजे, पृ0-11*
13. *छिन्नमस्ता (उपन्यास से उदधृत)-प्रमाखेतान*
14. *हिंदी साहित्य का इतिहास-सम्पादक-डॉ0 नगेन्द्र एवं हरदयाल पृ0 723*